आदिवासी कविता: संवेदना और प्रतिरोध का नयापन

रजिला. ओ.पि
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
सरकारी आर्ट्स & सयन्स कॉलेज
मीनचन्ता, कोषि़क्कोड
केरल

आदिवासी साहित्य और आदिवासी समाज का संबन्ध भी अटूट है एवं नजदीक ही। दलित साहित्य की तरह आदिवासी साहित्य भी जीवन और जीवन के यथार्थ का साहित्य है। कल्पना के आधार पर नहीं है जो भोगा है वही साहित्यकारों ने लिखा है। आदिवासी जीवन की शैली, समस्याएँ शोषण एवं पीडा ही उनके साहित्य की वस्तु है। आज आदिवासियों की मुख्य समस्या विस्थापन और पलायन है। आज विकास के नाम पर उन्हें जंगलों से खदेडा जा रहा है।

आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष में कविता को अपना मुख्य हथियार बनाया है। परंपरा, संस्कृति इतिहास से लेकर शोषण और उसका प्रतिरोध सब कुछ सामूहिक है। विस्थापन उनके जीवन को मुख्य समस्या बन गई। आदिवासी स्वर की कविताओं केवल आदिवास जीवनानुभव में सीमित रचनाएँ ही नहीं अंततः संपूर्ण मानवीय सरोकारों की अभिव्यक्ति है।

भारत के विकास के नाम पर आदिवासियों को अपनी भूमि और जंगलों से ही बेदखल किया गया है। जल, जंगल और जमीन की लडाई के पीछे विकास की जी राजनीति है उस पर निर्मला पुत्तुल तलखी से वार करती है। आदिवासी समाज पर आधुनिक विकास के पड रहे प्रभाव की चिंता ही पुत्तुल यहाँ व्यक्त नहीं कर रहे हैं, बल्कि ऐसे विकास के खिलाफ असहमति भरा स्वर भी है। निर्मला पुत्तुल की एक कविता 'तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पडेगा हमें' इस कविता में विकास के आधुनिक पैरामीटर को नकारती हुई कहती है-

अगर हमारे विकास को मतलब
हमारी बस्तियों की उजाडकर कल कारखानों बनाना है
तालाबों की मोधकर राजमार्ग
जंगलों का सफाया कर ऑफिसर्श कोलोनियाँ मरामी है
और पुनर्वास के नाम पर हगें
हमारे ही शहर की सीमा से बाहर हाशिए पर धकेलना है
तो तुम्हारे था कथित विकास की मुख्यधारा में
शामिला होने केलिए
सी बार सोचना पडेगा हमें

आदिवासियों को युगों-युगों से न्याय नहीं मिल सका है। प्रशासन में काम करनेवालों की टोली आदिवासियों की अशानता का पूर्ण लाभ उठाना चाहती है। अरुण कमल की कविता 'तमसो म ज्योतिर्गमय' जो कि एक समाचार पर आधारित है मध्यप्रदेश के एक गाँव में आदिवासियों ने बिजली लगाने का विरोध करते है अरुण कमल कहते है-

उन्हें रोशनी नहीं चाहिए
बिजली के तार और खंभे
ट्यूब और बल्ब नहीं चाहिए
एक अंधेरा जी सब अंधेरे से बडा और धना है
जहाँ रात ही रात है हजारों सालों से
बीहड जंगलों, और गहरे कुँओं के अंधेरे से भी
बडा और घना है।

लक्ष्मण सिंह कावडे की 'आज भी वैसी' कविता में आदिवासियों के विकास संबन्धी यथार्थ का चित्रण किया है। आदिवासी विकास के नाम पर आदिवासी समुदाय विस्थापन हो रहा है।

सदियों बीत गई, विकास के नाम पर
आदिवासी उपेक्षित जीवन जी रहे
बीहड 'अबुझमाड' के जंगलों में
भुरो और नंगे आज भी

भारत में विकास के नाम पर आदिवासियों को अपनी भूमि और जंगलों से भी बेदखल कर दिया गया। वे पहले भी खदेडे जाते रहे हैं, आज भी खदेडे जा रहे है। कवि हरिराम मीणा लिखते है-

"देखो आखिर तुम्हें खदेड ही दिया न
तुम्हारी जमीन से
तुम्हें नस्ताबूद करने केलिए
पर फिर भी तुम चुप हो? क्यों? आखिर क्यों?"

स्वंत्रता के बाद शिक्षा के बढते प्रसार से आदिवासी समाज भी थोडा बहुत लिख पद रहा है। अब उसने धनुष, मीर, रालवार की जगह कलम की अपनी औजार बना लिया है। अपने समाज में जागृति लाने का कठिन कार्य वह कर रहा है। आदिवासी साहित्यकारों में कविता लिखकर अपनी पीडा और वेदना की व्यक्त किया है। बाहरु सोनवर्ण ने 'स्टेज' कविता में अपने समाज की वेदना को वाणी दी है-

हम मंच पर गए ही नहीं। और हमें बुलया भी नहीं
उंगली के इशारे से। हमें अपनी जगह दिखाई गई
हम वही बैठ गए। हमें शाबासी मिली।
और ये मंच पर खडे होकर।
हमारा दुख हमसे ही कहते रह
हमारा दुख हमारा ही रहा।

कभी उनका नहीं हो पाया

हमने अपनी शंका पुसफुसाई।

वे कान खडे कर सुनते रहे

फिर ठंडी साँस भरी।

और हमारे ह कान पकड

हमें डोटा माफी माँगो... वरना...

प्रकृति और आदिवासी का संबन्ध बहुत गहरा संबन्ध है प्रकृति आदिवासियों की सहचारी रही है। प्रकृति ने उन्हें कभी रुलाया कभी हराया है। आज उसी प्रकृति से उसे बेदखला किया जा रहा है उससे जंगल, जमीन, जल, फल छीने जा रहे हैं। आदिवासी कवियत्री ग्रेस कुजुर कहती है-

'इसलिए फिर कहती है। न छोडो प्रकृति को
अन्यथा यही प्रकृति। एक दिन मांगेगी
हमसे। तुमसे। अपनी नरुणाई का
एक एक क्षण और करेगी। भयंकर बगावत
और तब। न तुम होगें। न हम होगों'

आदिवासी कवि जिस समाज में पैदा हुए, बडे हुए, पढ लिखकर आगे बढे उसी समाज के हिस्से में आयी दुरवस्था को देखकर दुखी है। बेचौन हौ महादेव टोप्पो अपनी समाज की संगठित शिक्षित होने का आह्वान करते हैं। अपने अन्याय, अत्याचारों के विरुद्ध उसे स्वयं लडाई, लडनी होगी तभी बदलाव या परिवर्तन संभव हो पायेगा 'सबसे बडा खतरा' कविता में कवि कहते है-

यह है सबसे बडा खतरा कि हम अपनी पहचान
खो रहे है। खो रहे है कि हम अपने स्वाभाविक
स्वर। न मिथिया रहे न गरजा रहे है इसी
कारण ऊँची अट्टालिकाओं में। पंखों के नीचे
हमारी असमर्थता पर मुस्कुरा रहे हैं
इसलिए मित्र आओ हम पहले अपने कंठों में
गरजती हुई आवाज भरे।

आदिवासी कविता शोषण के जो दृश्य प्रस्तुत करती है वैसे अन्यत्र नहीं मिलता। वाहरू सोहवणे की 'पहाड हिलाने लगे' नामक कविता में आदिवासी औरतों की संवेदना और शोषण को इस प्रकार प्रस्तुत करते है-

जवानी में वेश्य, बुढापे में डायन ऐसे ही कहते हैं लोग

एक ऐसी चीज जिसे घाट में बांट में

जहाँ मिले थाम लो, जब भी चाहे अंग लाग लो

पूरी हुई हवस तो, त्याग दो, चीख न पुकार।

आदिवासी ने आज अपनी मूक वेदना की वाणी देना प्रासं कर दिया है। कवियों ने आदिवासी जन जीवन और उनकी शोषण की सूक्ष्मता चित्रित करके उन्हें अत्यंत विश्वसनीय एवं जीवंत बनाया है। आदिवासी कविता अपने समाज के सवालों के साथ खडी है। चाहे वह सवाल पूँजी और पानी के सवाल हो या फिर पक्षी और पूर्वज के सवाल। देश की विकास यात्रा के इतिहास को लिखनेवाला भले ही देश की आदिम जनता को न जानते हो लेकिन कविता जानती है।

संदर्भ

1. आदिवासी विकास से विस्थापन- डॉ. रमणिका गुप्ता
2. हिन्दी में आदिवासी साहित्य- डॉ.इसपाक अली
3. भारतीय साहित्य और आदिवासी विमर्श- डॉ. माधव सोनटक्के, डॉ. संज़डय राठोड।